अध्याय 8

धर्मनिरपेक्षता

परिचय

जब विभिन्न संस्कृतियाँ और समुदाय एक ही देश में साथ-साथ रहते हों, तो लोकतांत्रिक राज्य उनमें से प्रत्येक के लिए समानता की गारंटी कैसे करे? पिछले अध्याय में यही सवाल सामने आया था। इस अध्याय में हम यह देखने की कोशिश करेंगे कि इस सवाल का जवाब देने में धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा का इस्तेमाल कैसे किया जा सकता है। भारत में धर्मनिरपेक्षता का विचार सार्वजनिक वाद विवादों और परिचर्चाओं में सदैव मौजूद रहा है। फिर भी, यहाँ धर्मनिरपेक्षता की स्थिति को लेकर कुछ मामले काफी पेचीदा हैं। एक ओर तो आमतौर पर हर राजनेता इसकी शपथ लेता है, हर राजनीतिक दल धर्मनिरपेक्ष होने की घोषणा करता है, दूसरी ओर, तमाम किस्म की चिंताएँ और संदेह धर्मनिरपेक्षता को घेरे रहते हैं। पुरोहितों और धार्मिक राष्ट्रवादियों द्वारा ही नहीं, कुछ राजनीतिज्ञों, सामाजिक कार्यकर्ताओं और यहाँ तक कि शिक्षाविदों द्वारा भी धर्मनिरपेक्षता का विरोध किया जाता है।
इस अध्याय में हम नीचे लिखे कुछ सवालों को पूछ कर इस जारी विमर्श में शामिल होंगे-

- क्या यह उन समाजों के लिए उपयुक्त है जिनमें धर्म का आज भी लोगों के व्यक्तिगत जीवन पर गहरा असर है।
- क्या धर्मनिरपेक्षता भारतीय मिट्टी में रोपा गया एक पश्चिमी पौधा है?
- क्या धर्मनिरपेक्षता में पक्षपात के चिह्न हैं।
- क्या इससे अल्पसंख्यकों का 'तुष्टीकरण' होता है।
- क्या यह धर्मविरोधी है।

इस अध्याय के अंत में आप भारत जैसे लोकतांत्रिक समाज में धर्मनिरपेक्षता के महत्त्व को जानने-समझने और भारतीय धर्मनिरपेक्षता की विशिष्टता के बारे में कुछ सीखने में समर्थ हो सकेंगे।

धर्मनिरपेक्षता

8.1 धर्मनिरपेक्षता क्या है?

यद्यपि यहूदियों को समस्त यूरोप में सदियों तक भेदभाव झेलना पड़ा था मगर वर्तमान इजरायल राष्ट्र में ईसाई और मुसलमान दोनों ही अरबी अल्पसंख्यक हैं। वे उन राजनीतिक और आर्थिक लाभों से वंचित हैं जो यहूदी नागरिकों को मिले हुए हैं। यूरोप के अनेक हिस्सों में गैर-ईसाइयों के प्रति भेदभाव के सूक्ष्म रूप अभी भी बरकरार हैं। पड़ोसी देश, पाकिस्तान और बांग्लादेश में भी धार्मिक अल्पसंख्यकों की स्थिति ने लोगों का ध्यान अपनी ओर खींचा है। इस तरह के उदाहरण हमें समकालीन विश्व में धर्मनिरपेक्षता के महत्त्व की याद दिलाते हैं।

धर्मों के बीच वर्चस्ववाद

हमारे अपने देश में संविधान घोषणा करता है कि हर भारतीय नागरिक को देश के किसी भी भाग में आज़ादी और प्रतिष्ठा के साथ रहने का अधिकार है। मगर वास्तव में वर्जना और भेदभाव के अनेक रूप अभी भी बरकरार हैं। नीचे दिए गए तीन उदाहरणों पर गौर करें–

- 1984 में दिल्ली और देश के बाकी हिस्सों में लगभग 2,700 से ज़्यादा सिख मारे गए। पीड़ितों के परिवारजनों का मानना है कि दोषियों को आजतक सजा नहीं मिली है।
- हज़ारों कश्मीरी पंडितों को घाटी में अपना घर छोड़ने के लिए विवश किया गया। वे दो दशकों के बाद भी अपने घर नहीं लौट सके हैं।
- 2002 में गुजरात में गोधरा दंगों के पश्चात लगभग 1,000 से अधिक लोग, मुख्यतः मुसलमान मारे गए। इन परिवारों के जीवित बचे हुए बहुत से सदस्य अपने गाँव वापस नहीं जा सके, जहाँ से वे उजाड़ दिये गये थे।

इन तमाम उदाहरणों में क्या बात सामान्य है? इन सभी उदाहरणों में किसी न किसी रूप में भेदभाव है। हर मामले में किसी एक धार्मिक समुदाय के लोगों को लक्ष्य किया गया और उनकी धार्मिक पहचान के कारण सताया गया। दूसरे शब्दों में नागरिकों के एक समूह को बुनियादी आज़ादी से वंचित किया गया। यह भी कहा जा सकता है कि ये सारे उदाहरण अंतर-धार्मिक वर्चस्व और एक धार्मिक समुदाय द्वारा दूसरे समुदायों के उत्पीड़न के मामले हैं।

धर्मनिरपेक्षता को सर्वप्रथम और सर्वप्रमुख रूप से ऐसा सिद्धांत समझा जाना चाहिए जो अंतर-धार्मिक वर्चस्व का विरोध करता है। हालाँकि यह धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा के महत्त्वपूर्ण पहलुओं में से केवल एक है। धर्मनिरपेक्षता का इतना ही महत्त्वपूर्ण दूसरा पहलू

धर्मनिरपेक्षता

अंत:धार्मिक वर्चस्व यानी धर्म के अंदर छुपे वर्चस्व का विरोध करना है। आइए, हम इस मुद्दे पर और विचार करते हैं।

धर्म के अंदर वर्चस्व

कुछ लोगों का मानना है कि धर्म महज 'जनसमुदाय के लिए अफीम' है और जिस दिन सभी लोगों की बुनियादी ज़रूरतें पूरी हो जाएँगी और वे खुशहाल तथा संतुष्ट जीवन-यापन करने लगेंगे, धर्म विलुप्त हो जाएगा। ऐसा विचार मानव की क्षमता के बारे में अतिरंजित बोध से पैदा होता है। यह संभावना से परे है कि मनुष्य कभी भी प्रकृति को पूरी तरह जान पाने और इसे नियंत्रित करने में समर्थ हो जाएगा। हम अपना जीवनकाल तो बढ़ा सकते हैं मगर अमर कभी नहीं हो सकेंगे। न तो रोगों का कभी पूरी तरह उन्मूलन हो सकता है और न हम अपनी जिंदगी में दुर्घटना और भाग्य के तत्त्व से छुटकारा ही पा सकते हैं। अलगाव और हानि मानव-स्थिति के अभिन्न अंग हैं। हमारे अधिकांश दुख-दर्द मानव निर्मित हैं इसलिए उनका अंत तो हो सकता है लेकिन कुछ कष्ट मानव निर्मित नहीं हैं। धर्म, कला और दर्शन ऐसे दुख-दर्दों के सटीक प्रत्युत्तर हैं। धर्मनिरपेक्षता भी इसे स्वीकार करती है और इसीलिए वह धर्मविरोधी नहीं हैं।

बहरहाल, जिन समस्याओं ने गहरे जड़ जमा रखा है, उनमें धर्म का भी कुछ योगदान है। उदाहरण के लिए किसी ऐसे धर्म के बारे में सोचना भी मुश्किल है, जो पुरुष और स्त्री को समान नजर से देखता हो। हिंदू धर्म में कुछ तबके भेदभाव से स्थायी तौर पर पीड़ित रहे हैं। मसलन, दलितों को हिंदू मंदिरों में प्रवेश से हमेशा रोका जाता रहा है। देश के कुछ हिस्सों में हिंदू महिलाओं का भी मंदिरों में प्रवेश वर्जित है। जब कोई धर्म एक संगठन में बदलता है तो आमतौर पर इसका सर्वाधिक रुढ़िवादी हिस्सा इस पर हावी हो जाता है जो किसी किस्म की असहमति बर्दाश्त नहीं करता। अमेरिका के कुछ हिस्सों में धार्मिक रुढ़िवाद बड़ी समस्या बन गया है जो देश के अंदर भी शांति के लिए खतरा पैदा कर रहा है और बाहर भी। कई धर्म संप्रदायों में टूट जाते हैं और निरंतर आपसी हिंसा तथा भिन्न मत रखने वाले अल्पसंख्यकों के उत्पीड़न में लगे रहते हैं।

इस प्रकार, धार्मिक वर्चस्व को केवल अंतर-धार्मिक वर्चस्व के तौर पर नहीं देखा जा सकता है। यह एक दूसरा सुस्पष्ट रूप यानी धर्म के अंदर वर्चस्व का रूप भी ग्रहण करता है। संस्थाबद्ध धार्मिक वर्चस्व के सभी रूपों का विरोधी होने के नाते धर्मनिरपेक्षता को न केवल अंतर-धार्मिक, बल्कि धर्म के अंदरूनी वर्चस्व को भी चुनौती देनी होगी।

हमारे पास धर्मनिरपेक्षता की आम धारणा मौजूद है। यह ऐसा नियामक सिद्धांत है जो धर्मनिरपेक्ष समाज, अर्थात अंतर-धार्मिक तथा अंत:धार्मिक, दोनों तरह के वर्चस्वों से रहित

धर्मनिरपेक्षता

समाज बनाना चाहता है। सकारात्मक रूप से देखा जाय तो यह धर्मों के अंदर आजादी तथा विभिन्न धर्मों के बीच और उनके अंदर समानता को बढ़ावा देता है। अब हम इस व्यापक ढाँचे के अंदर कुछ विशिष्ट और लघुत्तर सवालों पर विचार करते हैं। जैसे कि इन उद्देश्यों को पूरा करने के लिए किस प्रकार का राज्य सक्षम होगा। दूसरे शब्दों में धर्मनिरपेक्षता के लिए प्रतिबद्ध किसी राज्य को धर्म और धार्मिक समुदाय से कैसे संबद्ध होना चाहिए?

8.2 धर्मनिरपेक्ष राज्य

धार्मिक भेदभाव रोकने का एक रास्ता यह हो सकता है कि हम आपसी जागरूकता के लिए एक साथ मिलकर काम करें। लोगों की सोच को बदलने में मदद करने के लिए शिक्षा एक उपाय है। साझेदारी और पारस्परिक सहायता के व्यक्तिगत उदाहरण भी विभिन्न समुदायों के बीच पूर्वाग्रह और संदेहों को कम करने में योगदान दे सकते हैं। भयानक सांप्रदायिक दंगों के बीच हिंदुओं द्वारा मुसलमानों को अथवा मुसलमानों द्वारा हिंदुओं को बचाने की कहानियाँ पढ़ना हमेशा प्रेरणादायी होता है। लेकिन यह नामुमकिन है कि केवल शिक्षा या भलाई धार्मिक भेदभाव को मिटा दे। आधुनिक समाज में, राज्यों के हाथों में प्रचुर सार्वजनिक शक्ति निहित होती है। राज्यसत्ता जिस प्रकार काम करती है, उससे अंतर-सामुदायिक टकरावों और धार्मिक भेदभाव से अपेक्षाकृत कम ग्रसित समाज की रचना के प्रयासों पर निर्णायक प्रभाव पड़ता ही है। इस कारण हमें यह देखने की ज़रूरत है। कि धार्मिक टकराव रोकने और धार्मिक समानता को प्रोत्साहित करने के लिए किस किस्म की राज्यसत्ता आवश्यक है।

आओ कुछ करके सीखे

कुछ ऐसे तरीकों की सूची बनाओ जिनके माध्यम से सांप्रदायिक सद्‌भाव को बढ़ावा दिया जा सकता है।

एक राष्ट्र को किसी धार्मिक समूह के वर्चस्व को कैसे रोकना चाहिए? सबसे पहले तो राज्यसत्ता किसी खास धर्म के प्रमुखों द्वारा संचालित नहीं होनी चाहिए। पुरोहिताई व्यवस्था द्वारा प्रत्यक्ष रूप से शासित राष्ट्र धर्मतांत्रिक राष्ट्र कहलाता है। धर्मतांत्रिक राष्ट्र अपनी श्रेणीबद्धता, उत्पीड़न और दूसरे धार्मिक समूह के सदस्यों को धार्मिक स्वतंत्रता न देने के लिए कुख्यात रहे हैं। मध्यकालीन यूरोप में पोप की राज्यसत्ता या हाल के समय में तालिबानी राज्यसत्ता, जहाँ धार्मिक और राजनीतिक संस्थाओं के बीच अलगाव का अभाव था, इस प्रकार के उदाहरण हैं। यदि हमारे लिए शांति, स्वतंत्रता और समानता का कोई महत्त्व है तो, धार्मिक संस्थाओं और राज्यसत्ता की संस्थाओं के बीच संबंध विच्छेद अवश्य होना चाहिए।

कुछ लोग सोचते हैं कि संगठित धर्म और राज्यसत्ता के बीच संबंध विच्छेद ही धर्मनिरपेक्ष राज्य के अस्तित्व के लिए पर्याप्त है। मगर ऐसा होता नहीं दिखता है। अनेक

धर्मनिरपेक्षता

राज्य धर्मतांत्रिक न होते हुए भी किसी खास धर्म के साथ घनिष्ठ गठजोड़ बनाए रखते हैं। उदाहरण के लिए, सोलहवीं सदी में इंग्लैंड का राज्य पुरोहित वर्ग द्वारा संचालित न होते हुए भी स्पष्ट रूप से आंग्ल चर्च और इसके सदस्यों का पक्षपोषण करता था। इंग्लैंड में स्थापित आंग्ल चर्च का सुस्थापित ईसाई धर्म राष्ट्र का आधिकारिक धर्म भी था। आज सुन्नी इस्लाम पाकिस्तान का आधिकारिक राज्यधर्म है। ऐसे शासनतंत्रों में आंतरिक विरोध या धार्मिक समानता की तनिक भी गुंजाइश नहीं होती है।

सचमुच धर्मनिरपेक्ष होने के लिए राज्यसत्ता को न केवल धर्मतांत्रिक होने से इनकार करना होगा बल्कि उसे किसी भी धर्म के साथ किसी भी तरह के औपचारिक कानूनी गठजोड़ से परहेज करना होगा। धर्म और राज्यसत्ता के बीच संबंध विच्छेद धर्मनिरपेक्ष राज्यसत्ता के लिए ज़रूरी है, मगर केवल यही पर्याप्त नहीं है। धर्मनिरपेक्ष राज्य को ऐसे सिद्धांतों और लक्ष्यों के लिए अवश्य प्रतिबद्ध होना चाहिए जो अंशतः ही सही, गैर धार्मिक स्रोतों से निकलते हों। ऐसे लक्ष्यों में शांति, धार्मिक स्वतंत्रता, धार्मिक उत्पीड़न, भेदभाव और वर्जना से आजादी और साथ ही अंतर-धार्मिक व अंतःधार्मिक समानता शामिल रहनी चाहिए।

इन लक्ष्यों को प्रोत्साहित करने के लिए राज्य को संगठित धर्म और इसकी संस्थाओं से कुछ मूल्यों की खातिर अवश्य ही पृथक रहना चाहिए। बहरहाल यह मानने का कोई कारण नहीं है कि, राजनीतिक धर्मनिरपेक्षता किसी एक ही रूप में सामने आती है। वास्तव में इस पृथकता के विविध रूप हो सकते हैं, जो इस पर निर्भर है कि यह संबंध विच्छेद किस प्रकार हासिल किया गया है, किन खास मूल्यों को वह बढ़ावा देना चाहता है और इन मूल्यों को कैसे परिभाषित किया गया है। अब हम ऐसी दो संकल्पनाओं पर विचार करेंगे। एक है मुख्यधारा की पश्चिमी संकल्पना जिसका सर्वोत्तम नमूना अमेरिकी राज्य प्रस्तुत करता है और दूसरी है एक वैकल्पिक संकल्पना जिसका सर्वोत्तम उदाहरण भारतीय राज्य है।

वाद-विवाद-संवाद

अन्य धर्मों के बारे में अधिक जानना, बाकी लोगों और उनकी आस्थाओं का सम्मान करना और उन्हें स्वीकार करने की ओर पहला कदम है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि हम उन मूल्यों के लिए खड़े नहीं हो सकते जिन्हें हम आधारभूत मानवीय मूल्य मानते हैं।

8.3 धर्मनिरपेक्षता का यूरोपीय मॉडल

सभी धर्मनिरपेक्ष राज्यों में एक चीज़ सामान्य है। वे न तो धर्मतांत्रिक हैं और न किसी खास धर्म की स्थापना ही करते हैं। हालाँकि, सर्वाधिक प्रचलित संकल्पना में, जो मुख्यतः अमेरिकी मॉडल द्वारा प्रेरित है, धर्म और राज्यसत्ता के संबंध विच्छेद को पारस्परिक निषेध के रूप में समझा जाता है। राज्यसत्ता धर्म के मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगी और इसी प्रकार, धर्म राज्यसत्ता के मामलों में दखल नहीं देगा। दोनों के अपने अलग-अलग क्षेत्र हैं,

धर्मनिरपेक्षता

कमाल अतातुर्क की धर्मनिरपेक्षता

आइए, हम एक अत्यंत भिन्न किस्म की धर्मनिरपेक्षता पर नज़र दौड़ाते हैं। बीसवीं सदी के प्रथमार्ध में तुर्की में धर्मनिरपेक्षता अमल में आई। यह धर्मनिरपेक्षता संगठित धर्म से सैद्धांतिक दूरी बनाने की बजाय धर्म में सक्रिय हस्तक्षेप के जरिए उसके दमन की हिमायत करती थी। मुस्तफा कमाल अतातुर्क ने इस किस्म की धर्मनिरपेक्षता पेश की और उस पर अमल भी किया।

अतातुर्क प्रथम विश्वयुद्ध के बाद सत्ता में आए। वे तुर्की के सार्वजनिक जीवन में खिलाफत को समाप्त कर देने के लिए कटिबद्ध थे। वे मानते थे कि परंपरागत सोच-विचार और अभिव्यक्तियों से नाता तोड़े बगैर तुर्की को उसकी दुखद स्थिति से नहीं उबारा जा सकता है। उन्होंने तुर्की को आधुनिक और धर्मनिरपेक्ष बनाने के लिए आक्रामक ढंग से कदम बढ़ाए। उन्होंने खुद अपना नाम मुस्तफा कमाल पाशा से बदलकर कमाल अतातुर्क कर लिया (अतातुर्क का अर्थ होता है तुर्कों का पिता)। हैट कानून के जरिये मुसलमानों द्वारा पहनी जाने वाली परंपरागत फैज़ टोपी को प्रतिबंधित कर दिया गया। स्त्रियों-पुरुषों के लिए पश्चिमी पोशाकों को बढ़ावा दिया गया। तुर्की पंचांग की जगह पश्चिमी (ग्रिगोरियन) पंचांग लाया गया। 1928 में नई तुर्की वर्णमाला को संशोधित लैटिन रूप में अपनाया गया।

क्या आप ऐसी धर्मनिरपेक्षता की कल्पना कर सकते हैं, जो आपको अपनी पहचान से जुड़ा नाम रखने और आपकी पसंद के कपड़े पहनने की आजादी न दे, और आपकी बोलचाल की भाषा ही बदल डाले? आपके खयाल से अतातुर्क की धर्मनिरपेक्षता भारतीय धर्मनिरपेक्षता से किन मायनों में भिन्न है?

अलग-अलग सीमाएँ हैं। राज्यसत्ता की कोई नीति पूर्णतः धार्मिक तर्क के आधार पर निर्मित नहीं हो सकती। कोई धार्मिक वर्गीकरण किसी सार्वजनिक नीति की बुनियाद नहीं बन सकता। अगर ऐसा हुआ तो वह राज्यसत्ता के मामले में धर्म की अवैध घुसपैठ मानी जाएगी।

उसी प्रकार, राज्य किसी धार्मिक संस्था को मदद नहीं देगा। वह धार्मिक समुदायों द्वारा संचालित शैक्षणिक संस्थाओं को वित्तीय सहयोग नहीं दे सकता। जब तक धार्मिक समुदायों की गतिविधियाँ देश के कानून द्वारा निर्मित व्यापक सीमा के अंदर होती हैं, वह इन गतिविधियों में व्यवधान नहीं पैदा कर सकता। उदाहरण के लिए, अगर कोई धार्मिक संस्था औरतों के पुरोहित होने को वर्जित करती है, तो राज्यसत्ता इस मामले में कुछ नहीं कर सकती। अगर कोई धार्मिक समुदाय अपने भिन्न मतावलंबियों का बहिष्कार करता है तो राज्य इस मामले में मूक दर्शक ही बना रह सकता है। अगर कोई खास धर्म अपने कुछ सदस्यों को मंदिर के गर्भगृह में जाने से रोकता है, तो राज्य के पास मामले को यथावत बने रहने देने के सिवा कोई विकल्प नहीं है। इस विचार से धर्म एक निजी मामला है। वह राज्यसत्ता की नीति या कानून का विषय नहीं हो सकता।

यह संकल्पना स्वतंत्रता और समानता की व्यक्तिवादी ढंग से व्याख्या करती है। स्वतंत्रता का मतलब है- व्यक्तियों की स्वतंत्रता। समानता का तात्पर्य है- व्यक्तियों के बीच समानता।

इसमें यह गुंजाइश नहीं है कि किसी समुदाय को अपनी पसंद का आचरण करने की स्वतंत्रता रहे। समुदाय आधारित अधिकारों अथवा अल्पसंख्यक अधिकारों की कोई गुंजाइश नहीं है। पश्चिमी समाजों का इतिहास बताता है कि ऐसा क्यों है। यहूदियों की उपस्थिति को छोड़ दिया जाय तो अधिकांश पश्चिमी समाज काफी हद तक धार्मिक रूप से सजातीय थे। स्वभाविक रूप से इस तथ्य के चलते उनके केंद्र में अंत:धार्मिक वर्चस्व ही रहता था। जहाँ अनेक मामलों में वैयक्तिक स्वतंत्रता को साकार करने के लिए चर्च से राज्य के संबंध विच्छेद पर कड़ाई के साथ बल दिया जाता था वहीं अंतर-धार्मिक समानता और इसीलिए अल्पसंख्यकों के अधिकार के मुद्दे प्राय: उपेक्षित रह जाते थे।

इस तरह की धर्मनिरपेक्षता में राज्य समर्थित धार्मिक सुधार के लिए कोई जगह नहीं है। यह विशेषता सीधे तौर पर इस समझ से निकलती है कि राज्य और धर्म के अलगाव के लिए इनका पारस्परिक निषेध ज़रूरी है।

8.4 धर्मनिरपेक्षता का भारतीय मॉडल

कभी-कभी यह कहा जाता है कि भारतीय धर्मनिरपेक्षता पश्चिमी धर्मनिरपेक्षता की नकल भर है। लेकिन अपने संविधान को ध्यान से पढ़ने से पता चलता है कि ऐसा नहीं है। भारतीय धर्मनिरपेक्षता पश्चिमी धर्मनिरपेक्षता से बुनियादी रूप से भिन्न है। भारतीय धर्मनिरपेक्षता केवल धर्म और राज्य के बीच संबंध विच्छेद पर बल नहीं देती है। अंतर-धार्मिक समानता भारतीय

धर्मनिरपेक्षता के बारे में नेहरू के विचार

जब किसी विद्यार्थी ने नेहरू से यह बताने को कहा कि आज़ाद भारत में धर्मनिरपेक्षता का क्या मतलब होगा तो उन्होंने जवाब दिया था – 'सभी धर्मों को राज्य द्वारा समान संरक्षण'। वे ऐसा धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र चाहते थे जो 'सभी धर्मों की हिफाजत करे; अन्य धर्मों की कीमत पर किसी एक धर्म की तरफदारी न करे, और खुद किसी धर्म को राज्यधर्म के बतौर स्वीकार न करे'। नेहरू भारतीय धर्मनिरपेक्षता के दार्शनिक थे।

नेहरू स्वयं किसी धर्म का अनुसरण नहीं करते थे। ईश्वर में उनका विश्वास ही नहीं था। लेकिन उनके लिए धर्मनिरपेक्षता का मतलब धर्म के प्रति विद्वेष नहीं था। इस अर्थ में नेहरू तुर्की के अतातुर्क से काफी भिन्न थे। साथ ही, वे धर्म और राज्य के बीच पूर्ण संबंध विच्छेद के पक्ष में भी नहीं थे। उनके विचार के अनुसार, समाज में सुधार के लिए धर्मनिरपेक्ष राज्यसत्ता धर्म के मामले में हस्तक्षेप कर सकती है। जातीय भेदभाव, दहेज प्रथा और सती प्रथा की समाप्ति के लिए कानून बनवाने तथा देश की महिलाओं को कानूनी अधिकार और सामाजिक स्वतंत्रता मुहैया कराने में नेहरू ने खुद महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

अनेक मामलों में वे लचीला होने को तत्पर रहते थे, मगर यही एक चीज़ ऐसी थी जिस पर वे हमेशा दृढ़ और समझौताहीन बने रहे। उनके लिए धर्मनिरपेक्षता का मतलब था तमाम किस्म की सांप्रदायिकता का पूर्ण विरोध। बहुसंख्यक समुदाय की सांप्रदायिकता की आलोचना में वे खास तौर पर कठोरता बरतते थे क्योंकि इससे राष्ट्रीय एकता पर खतरा उत्पन्न होता था। उनके लिए धर्मनिरपेक्षता सिद्धांत का मामला भर नहीं था, वह भारत की एकता और अखंडता की एकमात्र गारंटी भी था।

धर्मनिरपेक्षता

संकल्पना के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। हम इस पर और भी विस्तार के साथ सोच-विचार करेंगे।

फ्रांसीसी सरकार ने शैक्षिक संस्थाओं में पगड़ी जैसे धार्मिक प्रतीक धारण करने पर रोक लगा दी थी। क्या तुम्हें उस निर्णय के बारे में हुई गर्मागर्म बहस याद है?

हाँ मुझे याद है। यह आश्चर्यजनक है कि फ्रांस और भारत दोनों ही धर्मनिरपेक्ष राज्य है लेकिन भारत में सार्वजनिक संस्थाओं में इस तरह के धार्मिक प्रतीक धारण करने या दिखाने पर कोई रोक टोक नहीं है।

ऐसा इसलिए है कि धर्मनिरपेक्षता के विचार को जिस तरह से भारत में देखा गया है वह फ्रांस के तरीके से भिन्न है।
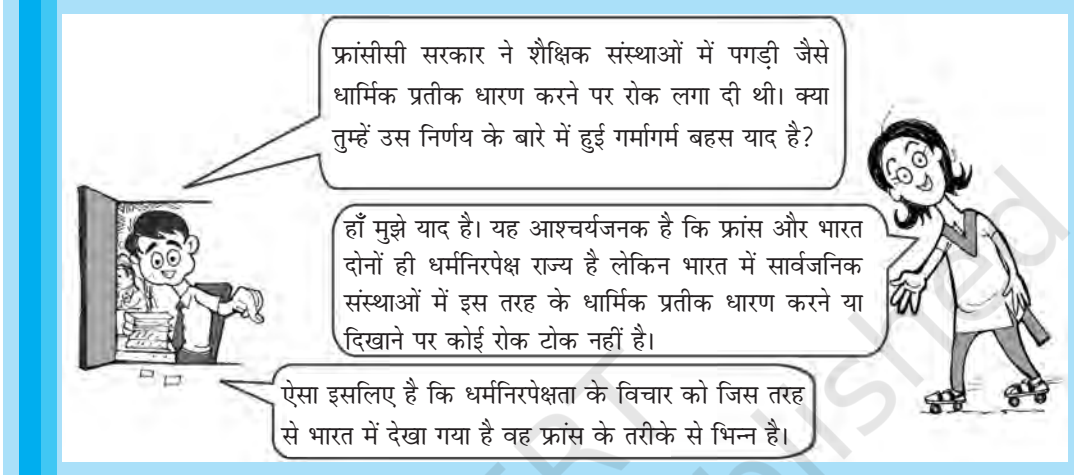
भारतीय धर्मनिरपेक्षता को कौन-सी चीज़ विशिष्ट बनाती है? सर्वप्रथम तो यह गहरी धार्मिक विविधता के संदर्भ में उदित हुआ था। यह विविधता पश्चिमी आधुनिक विचारों और राष्ट्रवाद के आगमन से पहले की चीज़ है। भारत में पहले से ही अंतर-धार्मिक 'सहिष्णुता' की संस्कृति मौजूद थी। बहरहाल हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि सहिष्णुता धार्मिक वर्चस्व की विरोधी नहीं है। हो सकता है सहिष्णुता में हर किसी को कुछ मौका मिल जाए, लेकिन ऐसी आजादी प्राय: सीमित होती है। इसके अलावा, सहिष्णुता हम में उन लोगों को बर्दाश्त करने की क्षमता पैदा करती है, जिन्हें हम बिल्कुल नापसंद करते हैं। यह उस समाज के लिए तो भारी गुण है जो किसी बड़े गृहयुद्ध से उबर रहा हो मगर शांति के समय में नहीं जब लोग समान मान-मर्यादा के लिए संघर्ष कर रहे हों।

पश्चिमी आधुनिकता के आगमन ने भारतीय चिंतन में अब तक उपेक्षित और हाशिए पर रही समानता की अवधारणा को सतह पर ला दिया। उसने इस धारणा को धारदार बनाया और हमें समुदाय के अंदर समानता पर बल देने की ओर अग्रसर किया। उसने हमारे समाज में मौजूद श्रेणीबद्धता को हटाने लिए अंतर-सामुदायिक समानता के विचार को भी उद्घाटित किया। इस तरह भारतीय समाज में पहले से मौजूद धार्मिक विविधता और पश्चिम से आए विचारों के बीच अंत:क्रिया शुरू हुई, जिसके फलस्वरूप भारतीय धर्मनिरपेक्षता ने विशिष्ट रूप ग्रहण किया। भारतीय धर्मनिरपेक्षता ने अंत:धार्मिक और अंतर-धार्मिक वर्चस्व पर एक साथ ध्यान केंद्रित किया। इसने हिंदुओं के अंदर दलितों और महिलाओं के उत्पीड़न और

धर्मनिरपेक्षता

भारतीय मुसलमानों अथवा ईसाइयों के अंदर महिलाओं के प्रति भेदभाव, तथा बहुसंख्यक समुदाय द्वारा अल्पसंख्यक धार्मिक समुदायों के अधिकारों पर उत्पन्न किए जा सकने वाले खतरों का समान रूप से विरोध किया। इस प्रकार, यह मुख्यधारा की पश्चिमी धर्मनिरपेक्षता से इसकी पहली महत्त्वपूर्ण भिन्नता है।

इसी से जुड़ी है *दूसरी* भिन्नता यह है कि भारतीय धर्मनिरपेक्षता का संबंध व्यक्तियों की धार्मिक आजादी से ही नहीं, अल्पसंख्यक समुदायों की धार्मिक आज़ादी से भी है। इसके अंतर्गत हर आदमी को अपनी पसंद का धर्म मानने का अधिकार है। उसी प्रकार, धार्मिक अल्पसंख्यकों को भी अपनी खुद की संस्कृति और शैक्षिक संस्थाएँ कायम रखने का अधिकार है।

वाद-विवाद-संवाद

धार्मिक पहचान और अंतर का बच्चों के लिए कोई मतलब नहीं है।

एक *तीसरी* भिन्नता भी है। चूँकि धर्मनिरपेक्ष राज्य को अंतर-धार्मिक वर्चस्व के मसले पर भी समान रूप से चिंतित रहना है, अतः भारतीय धर्मनिरपेक्षता में राज्य समर्थित धार्मिक सुधार की गुंजाइश भी है और अनुकूलता भी। इसीलिए भारतीय संविधान ने अस्पृश्यता पर प्रतिबंध लगाया है। भारतीय राज्य ने बाल विवाह के उन्मूलन और अंतर्जातीय विवाह पर हिंदूधर्म के द्वारा लगाए निषेध को खत्म करने हेतु अनेक कानून बनाए हैं।

बहरहाल, प्रश्न यह खड़ा होता है कि क्या कोई राज्य सुधारों की पहल या समर्थन करते हुए भी धर्मनिरपेक्ष बना रह सकता है? क्या धर्म और राज्य के बीच पूरी तरह से संबंध विच्छेद के बिना भी कोई राज्यसत्ता धर्मनिरपेक्ष होने का दावा कर सकती है? भारतीय राज्य का धर्मनिरपेक्ष चरित्र वस्तुतः इसी वजह से बरकरार है कि वह न तो धर्मतांत्रिक है और न ही वह किसी धर्म को राजधर्म मानता है। इसके परे, इसने धार्मिक समानता हासिल करने के लिए अत्यंत परिष्कृत नीति अपनाई है। इसी नीति के चलते वह अमेरिकी शैली में धर्म से विलग भी हो सकता है या ज़रूरत पड़ने पर उसके साथ संबंध भी बना सकता है।

भारतीय राज्य धार्मिक अत्याचार का विरोध करने हेतु धर्म के साथ निषेधात्मक संबंध भी बना सकता है। यह बात अस्पृश्यता पर प्रतिबंध जैसी कार्रवाइयों में झलकती है। वह जुड़ाव की सकारात्मक विधि भी चुन सकती है। इसीलिए, भारतीय संविधान तमाम धार्मिक अल्पसंख्यकों को अपनी खुद की शिक्षण संस्थाएँ खोलने और चलाने का अधिकार देता है जिन्हें राज्यसत्ता की ओर से सहायता भी मिल सकती है। शांति, स्वतंत्रता और समानता के मूल्यों को बढ़ावा देने के लिए भारतीय राज्यसत्ता ये तमाम जटिल रणनीतियाँ अपना सकती है।

अब तक यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि भारतीय धर्मनिरपेक्षता की यह जटिलता 'सर्व धर्म समभाव' के मुहावरे में क्यों समाहित नहीं हो सकती है। अगर इस मुहावरे का मतलब तमाम धर्मों का शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व या अंतर-धार्मिक सहिष्णुता है, तो इससे

धर्मनिरपेक्षता

चिंतन-मंथन

क्या धर्मनिरपेक्षता नीचे लिखी बातों के संगत है।

- ☐ अल्पसंख्यक समुदाय की तीर्थ यात्रा को आर्थिक अनुदान देना।
- ☐ सरकारी कार्यालयों में धार्मिक अनुष्ठान का आयोजन करना।

आओ कुछ करके सीखे

- ☐ बॉम्बे, गर्म हवा या इस विषय से जुड़ी कोई फिल्म देखें। इन फिल्मों में धर्मनिरपेक्षता के किन आदर्शों को दिखाया गया है।
- ☐ भीष्म साहनी के उपन्यास तमस या राही मासूम रजा के आधा गाँव को पढ़े।

काम नहीं चलेगा क्योंकि धर्मनिरपेक्षता का तात्पर्य शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व अथवा सहिष्णुता से काफी आगे तक जाता है। अगर इस मुहावरे का मतलब तमाम धर्मों के प्रति सम्मान की समान भावना है, तो इसमें एक अस्पष्टता है, जिसे स्पष्ट करना ज़रूरी है। भारतीय धर्मनिरपेक्षता तमाम धर्मों में राज्यसत्ता के सैद्धांतिक हस्तक्षेप की अनुमति देती है। ऐसा हस्तक्षेप हर धर्म के कुछ खास पहलुओं के प्रति असम्मान प्रदर्शित करता है। उदाहरण के लिए धर्म के स्तर पर मान्य जातिगत विभाजन भारतीय धर्मनिरपेक्षता के अंतर्गत स्वीकार्य नहीं हो सकता है। धर्मनिरपेक्ष राज्य के लिए ज़रूरी नहीं है कि धर्म के हर पहलू को वह एक जैसा सम्मान प्रदान करे। यह संगठित धर्मों के कुछ पहलुओं के प्रति एक जैसा सम्मान दर्शाने की अनुमति भी देता है।

8.5 भारतीय धर्मनिरपेक्षता की आलोचनाएँ

भारतीय धर्मनिरपेक्षता तीखी आलोचनाओं का विषय बनी रही है। ये आलोचनाएँ क्या हैं? क्या हम धर्मनिरपेक्षता को उनसे बचा सकते हैं?

धर्म-विरोधी

पहला, अक्सर यह तर्क दिया जाता है कि धर्मनिरपेक्षता धर्मविरोधी है। हम शायद यह दिखा पाने में सफल हुए हैं कि धर्मनिरपेक्षता संस्थाबद्ध धार्मिक वर्चस्व का विरोध करती है। यह धर्मविरोधी होने का पर्याय नहीं है। उसी प्रकार, कुछ लोग यह तर्क देते हैं कि धर्मनिरपेक्षता धार्मिक पहचान के लिए खतरा पैदा करती है। लेकिन हमने पहले ही देखा कि धर्मनिरपेक्षता धार्मिक स्वतंत्रता और समानता को बढ़ावा देती है। अतएव, यह धार्मिक पहचान पर खतरा पैदा करने की बजाय उसकी हिफाजत करती है। बेशक, वह धार्मिक पहचान के मतांध, हिंसक, दुराग्रही, औरों का बहिष्कार करने वाले और अन्य धर्मों के प्रति घृणा उत्पन्न करने वाले रूपों पर अवश्य चोट करती है। वास्तविक प्रश्न यह नहीं है कि किसी चीज़ पर चोट की जाय या नहीं, बल्कि यह है कि जिस पर प्रहार किया जा रहा है वह मूल रूप से उस योग्य है या नहीं।

पश्चिम से आयातित

दूसरी आलोचना यह है कि धर्मनिरपेक्षता ईसाइयत से जुड़ी हुई है, अर्थात यह पश्चिमी चीज़ है और इसीलिए भारतीय स्थितियों के लिए अनुपयुक्त है। पहली नज़र में, यह एक विचित्र शिकायत है क्योंकि पतलून से लेकर इंटरनेट और संसदीय लोकतंत्र तक, आज भारत में लाखों चीज़ें प्रचलन में हैं, जिनकी जड़ें पश्चिम में हैं। इसीलिए, पहला जवाब तो यही हो सकता है कि ऐसा है भी तो क्या हुआ? क्या आपने किसी यूरोपियन को शिकायत करते सुना है कि शून्य का आविष्कार भारत में हुआ था, अत: वे इसका इस्तेमाल नहीं करेंगे?

बहरहाल, यह एक किस्म का छिछला जवाब होगा। अधिक महत्त्वपूर्ण और प्रासंगिक बात यह है, कि सचमुच धर्मनिरपेक्ष होने के लिए किसी राष्ट्र का अपना खुद का लक्ष्य होना चाहिए। पश्चिमी राज्य तब धर्मनिरपेक्ष बने, जब एक महत्त्वपूर्ण स्तर पर, उन्होंने ईसाइयत से संबंध विच्छेद कर लिया। पश्चिमी धर्मनिरपेक्षता में वैसी कोई ईसाइयत नहीं है। फिर इस दावे का क्या मतलब कि यह पश्चिमी है? धर्म और राज्य का पारस्परिक निषेध, जिसे पश्चिमी धर्मनिरपेक्ष समाजों का आदर्श माना जाता है, सभी धर्मनिरपेक्ष राज्यसत्ता की प्रमुख विशेषता भी नहीं है। संबंध विच्छेद के विचार की व्याख्या अलग-अलग तरह से की जा सकती हैं। कोई धर्मनिरपेक्ष राज्यसत्ता समुदायों के बीच शांति को बढ़ावा देने के लिए धर्म से सैद्धांतिक दूरी बनाए रख सकती है और खास समुदायों की रक्षा के लिए वह उसमें हस्तक्षेप भी कर सकती है। भारत में ठीक यही बात हुई। यहाँ ऐसी धर्मनिरपेक्षता विकसित हुई है, जो न तो पूरी तरह ईसाइयत से जुड़ी है और न भारतीय जमीन पर सीधा-सीधा पश्चिमी आरोपण ही है। तथ्य तो यह है कि धर्मनिरपेक्षता का विगत इतिहास पश्चिमी और गैर-पश्चिमी, दोनों मार्गों का अनुसरण करता दिखता है। पश्चिम में चर्च और राज्य के संबंध विच्छेद का सवाल केंद्रीय था और भारत जैसे देशों में शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के सवाल महत्त्वपूर्ण रहे हैं।

अल्पसंख्यकवाद

तीसरी आलोचना के तौर पर धर्मनिरपेक्षता पर अल्पसंख्यकवाद का आरोप मढ़ा जाता है। यह सच है कि भारतीय धर्मनिरपेक्षता अल्पसंख्यक अधिकारों की पैरवी करती है, लेकिन सवाल यह है कि क्या यह न्यायोचित है? आप कल्पना कीजिए कि चार वयस्क पुरुष सबसे तेज चलने वाली गाड़ी में सफर कर रहे हैं। बीच में ही एक यात्री सिगरेट पीने की इच्छा व्यक्त करता है। दूसरा यात्री शिकायत करता है कि वह सिगरेट का धुँआ बर्दाश्त नहीं कर सकता। अन्य दो यात्री भी धूम्रपान करते हैं, मगर वे कुछ बोलते नहीं हैं। साफ तौर पर कम से कम दो यात्रियों के बीच तो टकराव अवश्य है। एक विचार आया कि मतदान के जरिये इसे हल किया जाय। सिगरेट पीने वाले दो खामोश यात्री उस व्यसनी का साथ देते हैं और धूम्रपान न करने वाला दो मतों के अंतर से हार जाता है। यहाँ अल्पसंख्यक

धर्मनिरपेक्षता

पराजित होता है, मगर नतीजा तो उचित प्रतीत होता है क्योंकि आम सहमति से उचित लोकतांत्रिक रीति अपनाई गई।

अब स्थिति को थोड़ा बदल दें। कल्पना करें कि सिगरेट न पीने वाला यात्री दमे से पीड़ित है। धूम्रपान से उसे जानलेवा दौरा पड़ सकता है। उसकी इस बात से कि दूसरा यात्री धूम्रपान न करे, उसका बुनियादी और बहुत ज़रूरी हित व्यक्त होता है। क्या बहुमत के फ़ैसले को सही मानने वाली, पहली पद्धति ऐसे संदर्भ में जायज मानी जा सकती है? क्या आप मानते हैं कि उस व्यसनी यात्री को तब तक सिगरेट नहीं पीनी चाहिए जब तक कि गाड़ी अपने गंतव्य पर न पहुँच जाय? आप सहमत होंगे कि जहाँ बुनियादी हितों का प्रश्न हो, वहाँ लोकतांत्रिक पद्धति के तौर पर मतदान उपयुक्त नहीं होता है। अपने महत्त्वपूर्ण हितों की पूर्ति किसी व्यक्ति का प्राथमिक अधिकार होती है। जो व्यक्तियों के लिए सही है, वह समुदायों के लिए भी सही होगा। अल्पसंख्यकों के सर्वाधिक मौलिक हितों की क्षति नहीं होनी चाहिए और संवैधानिक कानून द्वारा उसकी हिफाजत की जानी चाहिए। भारतीय संविधान में ठीक इसी तरीके से इस पर विचार किया गया है। जिस हद तक अल्पसंख्यकों के अधिकार उनके मौलिक हितों की रक्षा करते हैं, उस हद तक वे जायज हैं।

मेरा ख्याल है कि हर किसी के साथ हर स्थिति में बिल्कुल एक तरह से बरताव करना उचित नहीं है।

कुछ लोग फिर भी कह सकते हैं कि अल्पसंख्यकों के अधिकार ऐसे विशेषाधिकार हैं, जिसके लिए दूसरों को कीमत चुकानी पड़ती है। तब ऐसे विशेषाधिकार क्यों दिये जाएँ? एक अन्य उदाहरण से इसका जवाब बहुत अच्छी तरह दिया जा सकता है। कल्पना कीजिए कि किसी प्रेक्षागृह के पहले तल्ले पर कोई फिल्म दिखाई जा रही है। वहाँ सीढ़ियों के जरिये पहुँचा जा सकता है। टिकट खरीदने, सीढ़ी पर चढ़ने और फिल्म देखने की सबको इज़ाज़त है। लेकिन क्या ऐसा सचमुच है? क्या हर कोई ऐसा करने को स्वतंत्र है? कल्पना कीजिए कि उन लालायित दर्शकों में कुछ वृद्ध लोग भी हैं, कुछ ऐसे हैं जिनकी हाल ही में टांग टूट गई है और कुछ अन्य शारीरिक रूप से अक्षम हैं। उनमें से कोई भी सीढ़ियाँ नहीं चढ़ सकता है। क्या आपके ख्याल से लिफ्ट अथवा व्हील चेयर पर बैठे लोगों के लिए ढालनुमा सीढ़ी या लिफ्ट की व्यवस्था करना गलत होगा? ऐसा करने से वे लोग भी वही चीज़ पा सकते हैं, जो दूसरे लोग सहज ही सीढ़ियाँ चढ़कर प्राप्त कर रहे हैं। लेकिन, अल्पसंख्या वाले इस समूह को पहले तल्ले पर जाने के लिए भिन्न सुविधा की ज़रूरत है। अगर पूरी जगह में ऐसा निर्माण किया जाए, जो केवल युवा और सक्षम लोगों के लिए ही उपयुक्त हो, तो लोगों के कुछ खास हिस्से फिल्म देखने जैसे लाभ से हमेशा के लिए वंचित हो जाएँगे। उनके लिए अलग व्यवस्था उनके साथ विशेष बरताव नहीं है। उनके लिए यह वैसे ही सम्मान और गरिमा

धर्मनिरपेक्षता

से भरा बरताव है जैसा दूसरों के साथ किया जा रहा है। इसका मतलब यही है कि अल्पसंख्यक अधिकारों को विशेष सुविधाओं के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए।

अतिशय हस्तक्षेपकारी

चौथी आलोचना कहती है कि धर्मनिरपेक्षता उत्पीड़नकारी है और समुदायों की धार्मिक स्वतंत्रता में अतिशय हस्तक्षेप करती है। यह भारतीय धर्मनिरपेक्षता के बारे में गलत समझ है। यह सच है कि पारस्परिक निषेध के तौर पर धर्म और राज्य के संबंध विच्छेद के विचार को न मानकर भारतीय धर्मनिरपेक्षता धर्म में हस्तक्षेप को अस्वीकार कर देती है। लेकिन इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि यह अतिशय हस्तक्षेपकारी है। भारतीय धर्मनिरपेक्षता धर्म से सैद्धांतिक दूरी कायम रखने पर चलती है जो हस्तक्षेप की गुंजाइश भी बनाती है। इसके अतिरिक्त, हस्तक्षेप का मतलब अपने-आप में उत्पीड़नकारी हस्तक्षेप नहीं होता।

राज्य धर्मों के साथ एक समान बरताव किस तरह कर सकता है। क्या हर धर्म के लिए बराबर संख्या में छुट्टी कर देने से ऐसा किया जा सकता है? या सार्वजनिक अवसरों पर किसी भी प्रकार के धार्मिक समारोह पर रोक लगाकर समान बरताव किया जा सकता है?

यह बिल्कुल सही है कि भारतीय धर्मनिरपेक्षता राज्यसत्ता समर्थित धार्मिक सुधार की इज़ाज़त देती है। लेकिन इसे ऊपर से आरोपित किए गए बदलाव या उत्पीड़नकारी हस्तक्षेप के समान नहीं माना जाना चाहिए। लेकिन यह आपत्ति तो की ही जा सकती है कि क्या हमेशा ऐसा होता है? फिर विभिन्न धर्मों के निजी कानूनों में सुधार अभी तक क्यों नहीं हुआ? भारतीय राज्य के समक्ष यही बड़ी दुविधा है। एक धर्मनिरपेक्षवादी निजी कानूनों को संविधान द्वारा संरक्षित समुदाय-विशेष के अधिकारों के रूप में देख सकता है। वह इन कानूनों का विरोध भी कर सकता है क्योंकि ये महिलाओं को बराबरी का दर्जा नहीं देते और इसीलिए अन्यायपूर्ण हैं। साथ ही यह भी कहा जा सकता है कि ये कानून धर्मनिरपेक्षता के बुनियादी सिद्धांतों का तिरस्कार करते हैं। इन्हें अंतर-धार्मिक वर्चस्व से स्वतंत्रता की अभिव्यक्ति भी समझा जा सकता है और अंत:धार्मिक वर्चस्व की मिसाल भी।

ऐसे आंतरिक टकराव किसी जटिल सिद्धांत के स्वाभाविक अंग होते हैं, लेकिन ज़रूरी नहीं कि ये हमेशा हमारे साथ बने रहें। ये कानून अलग-अलग धर्मों में विवाह, उत्तराधिकार और अन्य पारिवारिक मामलों को संचालित करते हैं। निजी कानूनों को इस तरह से सुधारा जा सकता है कि वे अल्पसंख्यक अधिकारों के साथ-साथ पुरुषों और महिलाओं के बीच बराबरी की भी मिसाल बने रहें। ऐसे सुधार बलपूर्वक या राज्यसत्ता के जरिये नहीं लाये जा सकते, लेकिन राज्य इससे पूरी दूरी बनाए रखने की नीति भी नहीं अपना सकती है। राज्यसत्ता को हर धर्म के अंदर उदारवादी और लोकतांत्रिक आवाज़ का समर्थन करने के जरिये मददगार की भूमिका निभानी होगी।

धर्मनिरपेक्षता

वोट-बैंक की राजनीति

पाँचवाँ, तर्क यह दिया जाता है कि धर्मनिरपेक्षता वोट बैंक की राजनीति को बढ़ावा देती है। अनुभव जन्य दावे के तौर पर यह पूर्णत: असत्य भी नहीं हैं। मगर, हमें इस मुद्दे को ठोस परिप्रेक्ष्य में देखना होगा। प्रथमत:, लोकतंत्र में राजनेताओं के लिए वोट पाना ज़रूरी है। यह उनके काम का अंग है और लोकतांत्रिक राजनीति बड़ी हद तक ऐसी ही है। लोगों के किसी समूह के पीछे लगने या उनका वोट पाने की खातिर कोई नीति बनाने का वादा करने के लिए राजनेताओं को दोष देना उचित नहीं होगा। असली सवाल तो यह है कि वे ठीक-ठीक किस मकसद से वोट पाना चाहते हैं? इसमें सिर्फ उन्हीं का हित है या विचाराधीन समूह का भी हित है। यदि किसी राजनेता को वोट देने वाला समूह उसके द्वारा बनवायी नीति से लाभांवित नहीं हुआ, तो बेशक वह राजनेता दोषी होगा। यदि अल्पसंख्यकों का वोट चाहने वाले धर्मनिरपेक्ष राजनेता उनकी इच्छा पूरी करने में समर्थ होते हैं, तो यह उस धर्मनिरपेक्ष परियोजना की सफलता होगी, जो आखिरकार अल्पसंख्यकों के हितों की भी हिफ़ाजत करती है।

लेकिन, अगर कोई व्यक्ति विचाराधीन समूह का कल्याण अन्य समूहों के कल्याण और अधिकारों की कीमत पर करना चाहे, तब क्या होगा? यदि ये धर्मनिरपेक्ष राजनेता बहुसंख्यकों के हितों को नुकसान पहुँचायें, तब क्या होगा? तब एक नया अन्याय पैदा होगा। लेकिन क्या आप ऐसे उदाहरणों के बारे में सोच सकते हैं? एक-दो नहीं, बल्कि ऐसे ढेर सारे उदाहरण ताकि आप दावा कर सकें कि पूरा राजनीति-तंत्र अल्पसंख्यकों के पक्ष में झुका हुआ है। अगर खूब सोचें तब भी आप संभवत: यही पायेंगे कि भारत में ऐसा कुछ हुआ है, इसका कोई प्रमाण नहीं है। संक्षेप में, वोट बैंक की राजनीति खुद में इतनी गलत चीज़ नहीं है। गलत तो वोट बैंक की वैसी राजनीति है, जो अन्याय को जन्म देती है। महज यह तथ्य कि धर्मनिरपेक्ष दल वोट बैंक का इस्तेमाल करते हैं, कष्टकारक नहीं है। भारत में हर समुदाय के संदर्भ में सभी दल ऐसा करते हैं।

एक असंभव परियोजना

अंतिम उन्मादपूर्ण आलोचना यह हो सकती है कि "धर्मनिरपेक्षता नहीं चल सकती क्योंकि यह बहुत कुछ करना चाहती है, यह ऐसी समस्या का हल ढूँढ़ना चाहती है जिसका समाधान है ही नहीं।" यह समस्या क्या है? यही कि गहरे धार्मिक मतभेद वाले लोग कभी भी शांति से एक साथ नहीं रह सकते। हमारे अनुभव बताते हैं कि यह दावा गलत है। भारतीय सभ्यता का इतिहास दिखाता है कि इस तरह साथ-साथ रहना बिल्कुल संभव है। अन्यत्र भी ऐसा हुआ है। ऑटोमन साम्राज्य इसका प्रेरणादायी उदाहरण है। लेकिन अब आलोचक कह सकते हैं कि सह-अस्तित्व वस्तुत: असमानता की स्थितियों में ही संभव था। श्रेणीबद्धता आधारित प्रणाली में हर कोई जगह पा सकता था। उनका दावा है कि आज ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि अब समानता लगातार प्रभावी सांस्कृतिक मूल्य बनती जा रही है।

धर्मनिरपेक्षता

इस आलोचना का जवाब दूसरी तरह से दिया जा सकता है। एक असंभव परियोजना का अनुसरण नहीं वरन भारतीय धर्मनिरपेक्षता भविष्य की दुनिया का प्रतिबिंब प्रस्तुत करती है। भारत में महान प्रयोग किया जा रहा है जिसे समूची दुनिया बहुत पैनी निगाहों और बड़े चाव से देख रही है। ऐसा कहना ठीक भी है। अतीत में उपनिवेश रहे देशों से लोग अब पश्चिम के मुल्कों में आप्रवास कर रहे हैं। वैश्वीकरण में तेजी आने के साथ पूरे विश्व में लोगों की गतिशीलता अभूतपूर्व ढंग से बढ़ी है। योरोप और अमेरिका तथा मध्य-पूर्व के कुछ हिस्से अब धर्म और संस्कृति की विविधता के लिहाज से भारत जैसा दीखने लगे हैं। ये समाज भारतीय प्रयोग के भविष्य का गहरी रुचि के साथ अवलोकन कर रहे हैं।

भारत में राजपत्रित अवकाशों की सूची को ध्यान से पढ़ें। क्या यह भारत में धर्मनिरपेक्षता का उदाहरण प्रस्तुत करती है? तर्क प्रस्तुत करें।

अवकाश का नाम	दिनांक (2019 ई.)
गणतंत्र दिवस	जनवरी 26
महा शिवरात्रि	मार्च 4
होली	मार्च 21
महावीर जयंती	अप्रैल 17
गुड फ्राइडे	अप्रैल 19
बुद्ध पूर्णिमा	मई 18
ईद-उल-फ़ितर	जून 5
ईद-उल-अज़हा (बक़रीद)	अगस्त 12
स्वतंत्रता दिवस	अगस्त 15
जन्माष्टमी	अगस्त 24
मुहर्रम	सितंबर 10
महात्मा गांधी जयंती	अक्तूबर 2
दशहरा (विजय दशमी)	अक्तूबर 8
दिवाली (दीपावली)	अक्तूबर 27
ईद-ए-मिलादुन-नबी (पैगम्बर मुहम्मद साहब का जन्मदिन)	नवंबर 10
गुरु नानक जयंती	नवंबर 12
क्रिसमस	दिसंबर 25

धर्मनिरपेक्षता

1. निम्न में से कौन–सी बातें धर्मनिरपेक्षता के विचार से संगत हैं? कारण सहित बताइये।
   (क) किसी धार्मिक समूह पर दूसरे धार्मिक समूह का वर्चस्व न होना।
   (ख) किसी धर्म को राज्य के धर्म के रूप में मान्यता देना।
   (ग) सभी धर्मों को राज्य का समान आश्रय होना।
   (घ) विद्यालयों में अनिवार्य प्रार्थना होना।
   (ड.) किसी अल्पसंख्यक समुदाय को अपने पृथक शैक्षिक संस्थान बनाने की अनुमति होना।
   (च) सरकार द्वारा धार्मिक संस्थाओं की प्रबंधन समितियों की नियुक्ति करना।
   (छ) किसी मंदिर में दलितों के प्रवेश के निषेध को रोकने के लिए सरकार का हस्तक्षेप।

2. धर्मनिरपेक्षता के पश्चिमी और भारतीय मॉडल की कुछ विशेषताओं का आपस में घालमेल हो गया है। उन्हें अलग करें और एक नई सूची बनाएँ।

पश्चिमी धर्मनिरपेक्षता	भारतीय धर्मनिरपेक्षता
धर्म और राज्य का एक दूसरे के मामले में हस्तक्षेप न करने की अटल नीति	राज्य द्वारा समर्थित धार्मिक सुधारों की अनुमति
विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच समानता एक मुख्य सरोकार होना	एक धर्म के भिन्न पंथों के बीच समानता पर जोर देना
अल्पसंख्यक अधिकारों पर ध्यान देना।	समुदाय आधारित अधिकारों पर कम ध्यान देना
व्यक्ति और उसके अधिकारों को केंद्रीय महत्त्व दिया जाना	व्यक्ति और धार्मिक समुदायों दोनों के अधिकारों का संरक्षण

धर्मनिरपेक्षता

प्रश्नावली

3. धर्म निरपेक्षता से आप क्या समझते हैं? क्या इसकी बराबरी धार्मिक सहनशीलता से की जा सकती है।

4. क्या आप नीचे दिए गए कथनों से सहमत हैं? उनके समर्थन या विरोध के कारण भी दीजिए।
   (क) धर्मनिरपेक्षता हमें धार्मिक पहचान बनाए रखने की अनुमति नहीं देती है।
   (ख) धर्मनिरपेक्षता किसी धार्मिक समुदाय के अंदर या विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच असमानता के खिलाफ है।
   (ग) धर्मनिरपेक्षता के विचार का जन्म पश्चिमी और ईसाई समाज में हुआ है। यह भारत के लिए उपयुक्त नहीं है।

5. भारतीय धर्मनिरपेक्षता का जोर धर्म और राज्य के अलगाव पर नहीं वरन् उससे अधिक किन्ही बातों पर है। इस कथन को समझाइये।

6. 'सैद्धांतिक दूरी' क्या है? उदाहरण सहित समझाइये।